International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 1; Issue 5; May 2016; Page No. 77-80

अभिशप्त नारी मन का 'कोमल गांधार'

डॉ. संतोष कौल काक

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बी. एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुम्बई, महाराष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

मानव - जीवन हमेशा मृदु स्वरों के राग से सजा नहीं रहता। उसके जीवन के स्वर हमेशा संवादी नहीं रहते। परिस्थिति व् परिवेश भी सदैव उसके अनुरूप ही हों यह संभव नहीं। जहाँ उसका मनचीता न हो, वहाँ विरोधी स्थितियों तथा जीवन और जगत की संकीर्णता में जकड़कर मानव कभी असंतुष्ट होता है, अकुला जाता है, कराहता है, ललकारता है तो कभी आक्रोश से भर उठता है या अभिशाप देता है। विवशता में उसके भीतर संघर्ष का बवंडर उठता है।

लेखक की सामाजिक चेतना एवं संवेदना साधारण जनों की ऐसी अभावग्रस्त, दुखद, विषम परिस्थितियों से जब सम्बद्ध हो जाती है तो लेखक विक्षुब्ध हो मानववादी चेतना से अनुप्राणित हो ऐसे जीवनों का संवेदनापूर्ण चित्र अपनी रचनाओं में उकेरता है। हिंदी नाटकों का जन्म भी विरोध, क्षोभ, विद्रोह तथा संघर्ष के ऐसे ही वातावरण में हुआ। आधुनिक हिंदी नाटकों का आरंभ बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में आज़ादी की लड़ाई के दौरान राष्ट्रीय जागरण के वातावरण में हुआ। व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर भारतीय आत्मा ने जिस अन्तःसंघर्ष व विद्रोह का अनुभव किया उसीका नाट्यगत प्रस्तुतीकरण नाटकों में हुआ। विदेशी – शासन की स्वेच्छाचारिता, पुलिस के अमानवीय व्यवहार में होती वृद्धि, भारतीयों की दयनीय स्थिति – इन सबके प्रति उत्पन्न अतृप्ति, आक्रोश और विद्वेषपूर्ण विद्रोह तथा जागृति सर्वप्रथम भारतेंदु के नाटकों में, फिर उनके समकालीन और परवर्ती रचनाकारों के नाटकों में उद्घाटित हुई। हिंदी नाटकों की विकास – परंपरा के दूसरे दौर यानि प्रसाद – युग में देश की संस्कृति की अवनति से उत्पन्न आकुलता एवं असंतुष्टि के कारण विद्रोह का स्वर उनके नाटकों में, देशप्रेम परक व् राष्ट्रीय - चेतनाजनक गीतों के रूप में मुखरित हुआ। प्रसादोत्तर नाटककारों ने बदले परिवेशों के अनुरूप परंपरागत जीवनादर्शों एवं मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से देश – प्रेम, आत्म – बलिदान, हिन्दू – मुस्लिम एकता की भावनाएँ जनता तक पहुँचाने का कार्य किया। साथ ही इसमें बाधक तत्वों का विरोध करने की आवश्यकता भी प्रतिपादित की।

आधुनिक काल के नए नाटकों की पहचान के प्रमुख बिन्दुओं में महत्वपूर्ण थे –

1. पुरावृत्तों तथा ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से अपने समय के प्रश्नों पर विचार करना।
2. पौराणिक तथा ऐतिहासिक चरित्रों पर बने कृत्रिम आभामंडलों को तोड़कर उन्हें सामान्य मानव की तरह गुण एवं दोषों सहित देखना। रूमानी औदात्य के मोह को छिन्न – भिन्न कर विशिष्ट चरित्रों को प्रश्नों की कसौटी पर कसना।
3. रंगशिल्प को स्थूल मंच – विधान से अधिकतम मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से प्रयोग करना आदि।

मुख्यतः इन नाटकों ने मनोविश्लेषण की विलक्षण क्षमता के साथ जीवन की उलझी हुई रेखाओं के अंकन को अपना लक्ष्य बनाया।

अतीत संस्कार के रूप में मानव – मन में विद्यमान होता है और जीवन सहज ही मानव को अतीतावलोकन के लिए निमंत्रित करता है। अतीत की भूलों का निर्देश कर भविष्य की सुरक्षा की जा सकती है और इस प्रकार वर्तमान की विसंगतियों को दूर करने की कोशिश की जा सकती है। अतः आधुनिक नाटककारों ने उन सारे ऐतिहासिक, पौराणिक पात्रों को खोज निकाला जो अपनी क्षमताओं के बावजूद अप्रकाशित और अस्पृश्य रह गए थे। ऐसे पात्रों के द्वारा आधुनिक सन्दर्भ में उसी परिवेश का नया परिचय देकर वर्तमान जीवन – मूल्यों एवं मानवीय अनुभूतियों की तीव्र – वेदना व कसमसाहट को उन्होंने आँका। इस इतिहास – पुराण के प्रति मोह का पहला कारण था गौरवमय अतीत को दुहराते हुए वर्तमान विसंगतियों से पलायन कर, क्षणिक आत्मतोष पाना तो दूसरा कारण था अतीत द्वारा वर्तमान जीवन की विसंगतियों का उद्घाटन करना। प्रसाद से आरंभ हुई इस प्रवृत्ति ने आठवें दशक में आकर कलात्मक स्तर पर नए प्रतिमानों की स्थापना की। 'रस गन्धर्व', 'उर्वशी', 'शम्बूक की हत्या', 'कोमल गांधार' आदि नाटक इसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य को अपने प्रतिभापूर्ण लेखन के द्वारा जिन साहित्यकारों ने समृद्ध किया उनमें शंकर शेष का नाम उल्लेखनीय है। दस वर्ष तक अध्यापन, तीन वर्ष तक अनुसंधान अधिकारी, ७० से ७४ तक मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल में सहायक संचालक के रूप में कार्य, १९७४ में भारतीय स्टेट बैंक में राजभाषा विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में कार्यरत डॉ शंकर शेष ने कुल २१ नाटक, छः एकांकी नाटक, दो बाल नाट्य, चार अनुदित नाटक, चार उपन्यास एवं तीन अनुसन्धानात्मक प्रबंधों की रचना कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। "अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों के बोझ तले कराह रहे मनुष्य – मन का वेदना – विष पीने का संकल्प लेकर शेष के कलाकार मन ने राजपथ के गलीचों, नर्म बिछौनों का मोह त्याग दिया और मानव के अंतरतम में बैठने की ललक उसे जनपथ पर खींच लायी। "१ उनके घर में नित्य रामायण, महाभारत का पाठ होता रहता। महाभारत तो मानवीय गुणावगुणों का मिश्रण है। भीष्म, द्रोणाचार्य, गांधारी जैसे सशक्त पात्रों ने उन्हें प्रभावित किया। मन में कई प्रश्न व् जिज्ञासाएँ जगाईं। जिन्हें नाटक के माध्यम से दर्शकों के सामने रखते हुए उन्होंने उनके नए आयामों को प्रस्तुत किया।

आधुनिक मानव मन की विभिन्न स्थितियों, उसके मन की गहराइयों, सूक्ष्म संकीर्ण व्यापारों, आत्मसंघर्षों का मर्मस्पर्शी एवं अद्वितीय चित्रण उन्होंने मिथकों के सहारे किया। 'एक और द्रोणाचार्य', 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे (उपन्यास) के साथ – साथ स्त्री – जीवन की कोमल भावनाओं को कुचल डालने की प्रवृत्ति का चित्रण 'मूर्तिकार', 'रत्नगर्भा', 'बिन बाती के दीप', 'बाढ़ का पानी', 'बंधन अपने – अपने', खजुराहो का शिल्पी', 'घरौंदा', 'अरे !मायावी सरोवर', 'रक्तबीज', 'पोस्टर में उन्होंने किया। इसी कड़ी में मिथक के द्वारा आधुनिक भारतीय समाज की नारी की अस्वीकार्यता को हृदयंगम बनानेवाला नाटक है 'कोमल गांधार'। जिसमें हैं मानवीय अनुभूतियों की तीव्र वेदनाएँ भी और आधुनिक जीवन की समस्याएँ भी।

सत्यवती, अम्बा और अम्बालिका के आँसुओं में डूबता जा रहा था कुरुवंश का जहाज पहले से ही। जिस सत्यवती के बेटों के लिए भीष्म ने अपना राज्याधिकार छोड़, ब्रह्मचर्यत्व का वरण किया था, उसके प्रति वे अपराध - बोध से भरे थे क्योंकि यदि वे प्रतिज्ञा न करते तो वह एक बूढ़े कामासक्त के गले में बंधने से बच जाती। उसकी वंशवृद्धि रुकने से, कुरुवंश की समाप्ति के दुःख से वे माता सत्यवती की आँखों को सजल एवं दुखी नहीं देखना चाहते थे। एक तरफ यह चिंता थी तो दूसरी तरफ चिंता थी धृतराष्ट्र के एक दासी से गहराते संबंधों की, कि कहीं दासी से शुद्र पुत्र हो गया तो वह कहीं आगे चलकर सत्ता पर दावा न कर बैठे। कुरुवंश की परंपरा को अग्रसर रखने के लिए एक प्रतिष्ठित राजरक्त वाले उत्तराधिकारी की चिंता ने गुरुजनों व भीष्म को चिंतित कर दिया। अपने व्यक्तित्व, अस्तित्व व अपनी विमाता को संतुष्ट करने के लिए किसी राजकन्या से धृतराष्ट्र का विवाह करना अति आवश्यक

था. भीष्म के मन में गांधारी के प्रति विद्वेष न था परन्तु राज्य एवं कुल का हित सर्वोपरि माननेवाले भीष्म शीघ्र ही धृतराष्ट्रका विवाह करने की अनिवार्यता समझते हैं । उनकी दृष्टि में महत्त्व न तो गांधारी का था, न धृतराष्ट्र का । महत्वपूर्ण था - उत्तराधिकारी । " दो राजरक्त युक्त शरीर और एक कर्मकांड'' [2] ।

अकेलेपन से स्वयं संत्रस्त भीष्म अपनी सत्ता के बल पर गांधार - नरेश की पुत्री का विवाह अंधे धृतराष्ट्र से तय कर, उसे हस्तिनापुर ले आते हैं । गांधार - नरेश भी दबाव में आकर इस रिश्ते को मंजूरी दे देते हैं । एक आम युवा लड़की की तरह गांधारी के मन में सरल, तरल, कोमल भाव सुखद उमंग – तरंग बनकर लहराने लगते हैं । आत्मविभोर गांधारी को सारी प्रकृति सुन्दर और साँझ सुहानी सुहागन दिखाई देने लगती है । आशंकाओं, उत्कंठा, उत्साह से भरी आत्मविभोर गांधारी अपनी इतनी लम्बी यात्रा की थकान भी भूल जाती है । अपने विवाह की तैयारियों, ससुराल के वैभव से अभिभूत गांधारी के मन में प्रातःकाल की तरह सुंदर, कोमल स्वप्न - राग जाग उठते हैं । पर वह नहीं समझ पाती कि यह तो उसके जीवन- संघर्ष का आरम्भ है। उसकी व्यथा – कथा है जिसको मध्य में विस्तार व अंत में चरम संघर्ष के क्षणों को झेलना होगा । अपने भावी पति एवं सुखमय भविष्य के सपनों में लीन गांधारी को हस्तिनापुर पहुँचकर विवाह से एक दिन पूर्व जब, अपनी दासी से धृतराष्ट्र के अंधत्व का पता चला, तो उसके स्वप्नों पर घड़ों पानी फिर गया । अपने खिलाफ रचे गए इस घातक षड्यंत्र में भीष्म, संजय ही नहीं अपितु उसके पिता, भाई व भावी पति भी शामिल हैं - यह बात उसमें गहरी कचोट पैदा कर देती है । यहीं से शुरू होता है नारी का, गांधारी का अथाह, अथक विद्रोह और संघर्ष । अचानक घटी कोई दुर्घटना होती तो शायद वह उसे विधि का विधान समझकर स्वीकार कर भी लेती पर जान – समझकर रचा गया यह षड्यंत्र, यह धोखा उसमे घोर दुःख जगाता है । उसका यह दुःख क्रोध में, क्रोध घृणा में, घृणा विद्रोह में, विद्रोह दृढ़ता में, दृढ़ता प्रतिशोध में परिणत हो जाती है । "ये लोग अब समझ लें, स्त्री एक खाली ज़मीन नहीं है जिसे आसानी से रौंदकर शांति से जिया जा सके ! कुरुवंश को अपने इस अन्याय की कीमत चुकानी ही होगी, दासी !'' [3] उसकी इच्छा होती है, विवाह - मंडप से भाग खड़ी हो, सीधे बाहर चली जाये पर उसके संस्कार और मर्यादा आखिरी क्षण उसे डराकर भीरु बना देते हैं । बुजुर्गों द्वारा निश्चित विवाह से अलग होना परंपरागत मान्यताओं में जकड़ी हर लड़की के सामान गांधारी के लिए भी मुश्किल हो गया. "काश वह जा सकती ...तो स्त्री की मुक्ति के लिए शायद एक नयी दिशा खुल जाती, पर वह साहस नहीं बटोर पाई । तिरस्कार को केवल निजी स्तर पर दिखाकर रह गयी । उसे विरोध की सार्वजानिक भाषा नहीं दे पाई ।"[4]

शायद कुरुवंश को और स्त्रियों के शाप की आग में जलना था । गांधारी ने सोचा "क्षुद्रता, ढोंग और पाखण्ड । सौम्य चेहरों के पीछे छिपे भेडियों की विकराल आँखें।"[5] इनके बीच अपनी आँखें खोलकर वह अपना जीवन नहीं बिताना चाहती । कुरुकुल के प्रति क्षोभ, राजकीय आडम्बरों के प्रति घृणा एवं प्रतिशोध के भाव से भरकर उसने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली । उसके मन में अपने स्वत्व, व्यक्तित्व की अवहेलना, अभिलाषाओं की उपेक्षा, उसके नारीत्व का अपमान और अपने अस्तित्व का खंडन करनेवाले सामाजिक नियमों और परंपरागत विधि – निषेधों के विरुद्ध विद्रोह की भावना थी वह उन लोगों को बताना चाहती थी कि स्त्री पर अन्याय करने का नैसर्गिक अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं है । पर हाय री नारी ! वह नहीं जानती थी कि ऐसा करके वह एक और षड्यंत्र का शिकार हो बैठेगी । एक आदर्श बन जाएगी, कुल की प्रतिष्ठा बढाएगी । "मैं क्या जानती थी कि घृणा से जन्मी प्रतिमा लोगों के लिए आदर्श बन जाएगी । मैं क्या जानती थी कि अपने तिरस्कार से स्त्री – क्षमता का एक नया उदाहरण रच रही हूँ । क्या करूँ, संस्कारों ने मुझे आखिरी क्षण डरा दिया ।'[6]. उन लोगों ने उसकी घृणा को उत्सर्ग का नाम देकर, स्त्री – क्षमता का एक नया उदाहरण बनाकर महासतित्व का, देवी का पद दे दिया और इस तरह वह एक सुनहरे पिंजरे में, अपने ही बनाये किले में बंदी हो गयी । जहाँ से धृतराष्ट्र के कहने पर भी न वह बाहर आ सकी, न छुटकारा पा सकी । प्रतिशोध का यह प्रयत्न उसके जीवन की विडम्बना मात्र बनकर रह गया ।

प्रत्येक स्त्री कर्तव्यदक्ष, पराक्रमी पुरुष को चाहती है, पर दाम्पत्य – जीवन सम्बन्धी अपने यौवन सहज स्वप्नों के विपरीत जन्मांध धृतराष्ट्र से विवाह होने पर गांधारी की अभिलाषाएँ, कामनाएँ, स्वतंत्रता सब नष्ट हो गयीं । अंधे की लकड़ी बनने की नियति तो उसने स्वीकार कर ली । बाहरी स्तर पर व्यक्तित्वहीन, त्यागमूर्ति बनकर सामाजिक मर्यादाओं का, पत्नीव्रत धर्म का पालन व संतानों का उत्पादन करने लगी, परन्तु अधूरी यौवन - सहज अभिलाषाओं, अधूरे स्वप्नों ने उसे भीतर ही भीतर अशांत और आकुल करके उसके अंतर में एक ऐसा धधकता अग्निकुंड बना दिया, जिसके ताप से उसका व उसके अपनों का व्यक्तित्व दग्ध होने लगा । निश्चित ही विवाह हो जाने पर भी जब स्नेही, सहृदय, निश्छल, कोमल नारी का इस्तेमाल उत्तराधिकारी के लिए मात्र होगा तो मन कैसे जुड़ेगा ? परिणामस्वरूप धृतराष्ट्र द्वारा अपनी सच्चाई के असंख्य प्रमाण देने पर भी गांधारी का टूटा विश्वास तंतु जुड़ न पाया । पति – पत्नी के बीच एक दीवार खड़ी हो गयी । ओढ़े हुए अंधत्व और अहम के कारण उसका पत्नीत्व एवं मातृत्व भी उससे दूर चला गया ।

भीष्म ने पांडु के भी दो विवाह करवा दिए । यहीं से शुरू हुई गांधारी के साथ कुंती के जीवन की तुलना । लगातार की जानेवाली यह तुलना उसे अभिशाप लगती रही । मानसिक कुंठाओं ने उसे संकीर्ण बना दिया । उसके स्त्री सुलभ मत्सर तथा स्पर्धाभाव यहाँ उसके चरित्र के महासतीत्व की ओर नहीं, अपितु एक साधारण स्त्री के स्वाभाविक, सहज और सर्वसामान्य पहलू की और रेखांकित करते हैं । कुंती से तुलना के समय उसके चरित्र में न असाधारण दृढ़ता दीखती है और न ही महासतीत्व । वह महासती होती तो पति के अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करती, उसकी आँखों की रौशनी बनती, उसे अपनी आँखों से दुनिया दिखाती, पति की प्रगति एवं फैलाव के रास्ते बंद करते हुए अपनी आँखों पर पट्टी न बांधती । एक अन्यायभोक्ता स्त्री होने के कारण अन्य वैसी ही स्त्री यानि द्रौपदी की असहायता, उसके चीरहरण को रोकने की कोशिश करती । वह रोकती, तो किसी में द्रौपदी का चीर - हरण करने, उसे अपमानित करने का साहस ही न होता । पर वह ऐसा चाहती तो करती न । वह तो इर्ष्यावश कुंती की जीत पर विश्वास भी नहीं करना चाहती ।" नहीं शकुनि, कुंती नहीं जीत पाएगी । मैं कहती हूँ, कुंती नहीं जीत पाएगी !" [7] कुंती से उसकी तुलना करके, उसे ठेस पहुँचाकर, उसकी ईर्ष्या-अग्नि में घी डालने का काम धृतराष्ट्र, शकुनि यहाँ तक कि उसका पुत्र दुर्योधन भी करते हैं । दोनों राजकन्याएँ, कुरुकुल - वधुएँ धोखे का शिकार हुई पर उनमे अंतर था । कुंती ने अपने दुःख को जड़ता और संज्ञाहीनता की भाषा नहीं दी ।, उसका उदात्तीकरण किया । निराशा में भी जीवन की एक सार्थक व्याख्या ढूँढी । और गांधारी ने दुःख में जीवन की गतिशीलता को नकार कर उदासीनता व कडवाहट उगली । स्वयं ही अनगिनत अनदेखी दीवारों में जकड़ती चली गई । धृतराष्ट्र के अंधत्व एवं गांधारी के ओढ़े हुए थोथे अंधत्व ने बच्चों को दिशाहीन बना दिया । बच्चे भ्रांत दिशाओं में भटकते, माँ के दुलार, पुचकार व ममता के लिए तरसते रहे ।" आखिर युद्ध – विद्या हमने भी द्रोणाचार्य से सीखी ...पांडवों ने भी । हम संख्या में पांडवों से अधिक थे ...लेकिन हम एक भी पांडव नहीं मार पाए । कहाँ रह गया अधूरापन हमारे जीवन में !'' [8]. दुर्योधन को दुःख था उनकी मंदिर के कलश -सी, महासती माँ न उन पर विश्वास कर पायी, न उनका निर्माण कर पायी । "प्रेम से कोई बिगड़ता है, काका. हमें तो माँ – बाप ने केवल अस्तित्व दिया, हमारी रचना नहीं की ...ज... माँ - ...तू असाधारण ही बनी रह . हम साधारण लोगों की असाधारण माँ ! हम साधारण ही जन्मे ... वैसे ही मरे ... जा, माँ !'' [9] ।

अपने पर हुए अन्याय का विरोध करनेवाली, स्त्री जीवन की अनंत संभावनाओं की उपेक्षा करनेवाली गांधारी । बेचारी, औरों के लिए जो ममता का, वात्सल्य का क्षण था, उसके लिए मोह का क्षण बन गया । पत्नीत्व से मातृत्व आखिर में सबल हो उठा। अपनी आँखों पर पट्टी बाँध, दृढ प्रतिज्ञा के बावजूद अपने पुत्र दुर्योधन को देखने की चाह में पट्टी हटा लेना कोई ग्लानि की बात नहीं थी, पर इस सच्चाई के खुलते ही अपराध बोध से भर उसने धृतराष्ट्र से क्षमा मांगी और वाह रे पुरुष ! धृतराष्ट्र को वह स्त्री – जिसके साथ संग करते हुए वह चाहकर भी न भूल पाता था कि वह असाधारण है, उच्च तपस्विनी है, वह उसकी बराबरी नहीं कर पाएगा क्योंकि वह अपात्र है, उसी गांधारी को अपने सामने भय से पिघलकर क्षमा मांगते देखकर वह उसे महान लगने लगती है 'बाहर से भी और भीतर से भी'. विद्रोही वह भीतर से है, बाहर से नहीं ।

अपने बीते हुए दिनों के बोझ से धृतराष्ट्र तथा गांधारी का अहम टूट जाता है। अपनी असफल आकांक्षाओं की श्मशान - यात्रा में वैराग्यपूर्ण जीवन बिताकर, युद्ध क्षेत्र में आहत होकर पड़े अपने पुत्र के वह दर्शन करती है, पर इस मोड़ पर भी पुत्र के मर्मान्तक प्रश्नों का उत्तर उसके पास नहीं है।

अंत में सब कुछ विनष्ट हो जाने के उपरान्त पति -पत्नी को अपने अहम का, गांधारी को अपने प्रतिशोध के खोखलेपन का, उससे उपजे भयावह परिणामों का बोध हुआ। तब कहीं जाकर वे अहम त्यागने के उपरान्त ही एकदूसरे का प्रेम व विश्वास पाने में सफल हुए और जीवन का मूल समझने में भी। पर तब तक समय उनको चूसे हुए आम की तरह इतिहास के घूरे पर फेंक चुका था। दोनों के मन का राग-द्वेष शांत, दोनों एक - दूसरे के बहुत करीब, एक तान – एक लय, जिसका अनुभव उन्हें पहले कभी न हुआ था। युद्ध की परिसमाप्ति पर पांडवों के आश्रय को छोड़कर, गांधारी पति के साथ अपनी नियति के अनुसार वन चली जाती है और वहाँ एक युग के आखिरी अध्याय के आखिरी पन्नों की तरह वे दो कडवाहट के पात्र दावानल की गोद में जल जाते हैं। उस ज्वाला में संकेत है नव – अध्याय के प्रारंभ का। क्योंकि वास्तव में वह दो व्यक्तियों की मृत्यु नहीं, अपितु उस कडवाहट, घृणा, अहम् और प्रतिशोध की मृत्यु है जो मनुष्य को उन्मादी, दिशाहीन, दिग्भ्रमित बना देती है, वह चिता प्रतिशोध और नकारात्मकता को भी जला रही थी।

आधुनिक नाटककारों का मानना था कि चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बताने के लिए उसका निर्दोष होना ज़रूरी नहीं है महान से महान मनुष्य में भी कमजोरियाँ होती हैं। यही कमजोरियाँ उसे मनुष्य बनाती हैं, उसे सजीवता प्रदान करती हैं। 'कोमल गांधार' के सभी पात्र इसी वजह से विश्वसनीय एवं प्रभावशाली हैं क्योंकि वे अपने चारित्रिक गुण - दोषों के साथ उपस्थित हैं।

एक ओर सामाजिक मर्यादाओं के पालन के लिए सचेत और दूसरी ओर अपने अधिकारों के छिन जाने से उद्वेग व विद्रोहभरी गांधारी के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक नारी की सत्तामूलक समस्याओं को प्रकाश में लाने का सफल प्रयास किया है। प्राचीन और नवीन, मिथ और यथार्थ की परस्पर छेद देनेवाली रेखाएँ यहाँ उद्घाटित हुई हैं। लेखक ने इस नाटक में स्त्री – जीवन की समस्याओं से जुड़े अनेक भावनात्मक प्रश्न उठाए हैं। "स्त्री को समझने के लिए कभी शरीर के पार भी जाना होता है !'' [9] सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं, कर्तव्यों की आड़ में पाप-पुण्य की विवेचना के बिना स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों तथा गलतियों की ओर व्यक्ति को धकेल देनेवाली नैतिक परंपरा एवं सामाजिक नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ ही साथ नारी की अस्मिता के सवाल भी उठाए हैं की क्या वह समझौते के रूप में आदान – प्रदान की जानेवाली वस्तु है ? भीष्म के सपने बेचकर सत्यवती खरीदी गई, अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका लूटकर सामान की तरह लायी गई गांधारी पूछती है, "ये लोग समझते क्या हैं ! मैं एक स्त्री हूँ, इसलिए मुझपर अन्याय करने का इन्हें एक नैसर्गिक अधिकार प्राप्त है ? सब एक जात के हैं – मेरा पिता, भीष्म, और यहाँ तक कि मेरा भावी पति धृतराष्ट्र भी !'' [10].

प्रश्न गंभीर है। गांधारी स्त्री है इसलिए उसपर अन्याय करने का उसके पिता, भीष्म यहाँ तक कि उसके भावी पति धृतराष्ट्र को क्या अधिकार है ? उसके जीवन के फैसलों में उसकी सहमति का कोई अर्थ नहीं है क्या ? विवाह के लिए स्त्री की सहमति क्यों ज़रूरी नहीं ? क्यों नकार दिया गया उसके अस्तित्व को पूरी तरह से ? सबने मिलकर योजनाबद्ध ढ़ंग से उसपर अन्याय नहीं किया क्या ? क्या स्त्री के स्वाभिमान या अस्मिता का कोई स्थान नहीं समाज में ? क्या समाज और राजनीति की उसके प्रति इतनी क्रूरता उचित है ? भीष्म पितामह हों, या कोई उच्च कुलीन, धनाढ्य हो या कोई बुज़ुर्ग अथवा युवा – ये सभी नारी को एक खाली ज़मीन या सन्तानोत्पत्ति के साधन से अधिक कुछ क्यों नहीं समझते ? क्यों और कैसे वे ऐसा अमानवीय आचरण कर, स्त्री की भावनाओं को रौंद कर चैन पाते हैं ? ऐसे कई सवाल इस नाटक में उठाए गए हैं। सच है कि स्त्री एक खाली ज़मीन नहीं, जिसे आसानी से कुचलकर जिया जा सके। जो स्त्री अपना जीवन कुल के लिए, पति-बच्चों के लिए समर्पित कर देती है उसके बारे में कभी विचार क्यों नहीं किया जाता ? सत्यवती या गांधारी की तरह एक स्त्री दूसरी स्त्री के शोषण – अन्याय का कारण कैसे बन जाती है ? वे मिलकर अत्याचार को रोकने का प्रयास क्यों नहीं करतीं ? गांधारी के चरित्र को नए आयामों में उपस्थित करने के साथ ही लेखक ने इस कृति को दर्शन व चिंतन के धरातल पर भी सशक्त बनाया है। शेषजी स्त्री पर युगों से हो रहे अत्याचार को सहजता से प्रस्तुत कर नारी-जीवन के कोमल गांधार यानी कोमल भावों को छीननेवाली हमारी व्यवस्था को नष्ट करने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं।

ऐतिहासिकता और पौराणिकता की मात्रा इस नाटक में कम है और सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन अधिक क्योंकि यही रचनाकार का उद्देश्य है। भारत अनादि काल से परिवार या कुटुंब को पवित्र नारी-पुरुष सम्बन्ध के बल पर स्थिर सुदृढ़ सामाजिक संस्था मानता रहा है। पति व पत्नी, परमेश्वर व पार्वती के अभिन्न युग्म, तन-मन से एकीभूत, दोनों का एक लक्ष्य – परिवार की स्वस्थता और उन्नति। इस दृढ समबन्ध के मूल में होती है सक्रिय हार्दिकता,विश्वास और सहिष्णुता। 'मैं' और 'तुम' के स्थान पर 'हम' की भावना। विद्वेष, विरोध और संघर्ष से दूर. युग बदला, जीवन भी बदला। बदलते युगीन परिवेश के कारण मूल्यों में भी भारी परिवर्तन हुए। व्यक्तिवादिता आई, परिवार असंतोष और अहम् का केंद्र बने। अस्त-व्यस्त परिवार का असर हुआ उन बच्चों पर, जिनके निर्माण में पिता का अनुशासन व माता की ममता, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। पति पत्नी के सम्बन्ध मात्र वासना के स्तर तक सिमट आने से परिवार एक ऐसा संघर्ष -स्थल बन गया जिसका असर बच्चों पर पड़ा। प्यार व ममता के अभाव में माता – पिता के प्रति संतानों के मन में विद्रोह का भाव भभकता रहता है तो माता – पिता के कारण घर में उपजे तनाव से संत्रस्त वे दिशाहीन, कुंठित और विद्रोही बन जाते हैं। इस प्रभाव को रचनाकार ने नाटक में गांधारी, धृतराष्ट्र व उनकी संतानों के माध्यम से बताया है।

आधुनिक नारी का चेहरा पुरानी मनस्विनी का नहीं है। उसमें विद्रोह की तेज़ लहर है। एक व्यक्ति की हैसियत से उसे अपना जीवन और स्त्रीत्व बड़े महत्वपूर्ण लगते हैं। विवाह – बंधन यूँ पति-पत्नी को एकाकार बना देता है। अतः दोनों के निजी अहंकार, मानापमान का कोई स्थान वहाँ नहीं होना चाहिए। पति- पत्नी के सम्बन्ध रुपी वृक्ष को विश्वास, त्याग, क्षमा, औदार्य आदि पोषक तत्व सदा हरा-भरा रख सकते हैं। डॉ. शेष पति-पत्नी को परस्पर पूरक मानकर विश्वास और समर्थन के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं। प्रतिशोध का भाव तो इस सम्बन्ध का शत्रु है। अहम् के कारण दाम्पत्य-जीवन और व्यक्ति का स्वयं भी अधः पतन होता है। गृहस्थ जीवन में दोनों का स्थान समान एवं महत्वपूर्ण है यह मानकर ही स्नेहपूर्ण साहचर्य,परस्पर सहयोग से इस जीवन को सुखमय व् सौहार्द्रपूर्ण बनाया जा सकता है .

स्त्री का प्राकृतिक गुण है सहनशीलता। हर विसंगत अथवा विषम परिस्थिति में भी जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर जीवन का सृजन करना उसका प्राकृतिक गुणधर्म है। लेकिन जब वह इसके विपरीत आचरण करती है, वह उसके लिए ही आत्मघात का कारण बन जाता है। मातृत्व को महत्ता देते हुए नाटककार शेष ने इस नाटक में कुंती एवं गांधारी के उत्तरदायित्वों को स्पष्टतः प्रतिष्ठित किया है। " पति की मृत्यु के बाद वह भी दीन – हीन – लाचार आचरण कर सकती थी, बैठकर रो सकती थी, हमारे टुकड़ों पर पलकर वह अपनी संतान को अपाहिज बना सकती थी, लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया ... स्त्री की भूमिका से वह पुरुष की भूमिका में फ़ैल गयी ... और तुम ... ? ... क्या उसने भी स्वप्न नहीं देखे होंगे तुम्हारी तरह ... लेकिन नहीं ...वह तुम्हारी तरह टूटी नहीं, उसने अपने दुःख को एक जड़ता और संज्ञाहीनता की भाषा नहीं दी तुम्हारी तरह ... निराशा में भी उसने जीवन की एक सार्थक व्याख्या ढूँढी। उसे नकार नहीं दिया ... ।" [11] गांधारी ने जीवन में एक भूल की. मातृत्व के प्रति अनदेखा करने की भूल और सारी पीढ़ी का ध्वंस हो गया. पर कुंती ने अपनी पितृहीन संतानों को भी एक दिशा दी। इस तरह आदर्श पात्र भी चित्रित हैं ताकि आदर्शों की स्थापना की जा सके।

नाटक में कहीं – कहीं पुरुषों की परिवर्तित मानसिकता भी द्योतित होती है। संजय आधुनिक सचेत, विवेकशील, तटस्थ पुरुष हैं जो मर्यादा, नैतिकता, न्याय व सत्य को खंडित होते हुए देखकर भी तटस्थ हैं, बेबस व लाचार हैं। वे समझते हैं कि गलत हो

रहा है पर कुछ कर नहीं पाते। वहीँ धृतराष्ट्र एक संवेदनशील, सहनशील, दूसरों द्वारा किये गए अपराध के भोक्ता निरपराध आधुनिक पुरुष हैं जो पत्नी से जुड़कर फैलना चाहते हैं। उन्हें अक्सर लगता है कि वे अंधे जन्मे क्योंकि वे प्रेम की नहीं घृणा की संतान हैं और यह तो कदापि नहीं चाहते कि उनकी संतान के साथ ऐसा ही हो, "मैं प्रेम की नहीं घृणा की संतान हूँ। घृणा के इतिहास की अगली कड़ी नहीं बनना चाहता।" [12] वे अपने अंधत्व के अधूरेपन को गांधारी के द्वारा भरे जाने की चाह रखकर उसे समझाने का हर संभव प्रयास भी करते हैं। अपाहिजपन की पीड़ा के भोक्ता हैं वे। पत्नी चाहे उन्हें न समझ पायी, वह उसकी घृणा, ढोंग को समझकर एक मित्र की तरह इस स्थिति के दुष्परिणामों से अवगत करना चाहते हैं। "तिरस्कार और कड़वाहट से पैदा होंगे केवल घृणा के बच्चे, और कुछ नहीं। घृणा के फैलाव से न तुम बचोगी, न मैं ... और न हमारा परिवार . ... मेरा क्या है, इतिहास अंधेपन के नाम पर मेरी गलतियों को क्षमा कर देगा, लेकिन तुम्हें ... ." [13]।

गांधारी को वे उसकी भूल का एहसास ही नहीं कराना चाहते, समाज के सामने उसके निर्णय को अपना निर्णय मानकर उसके सम्मान की रक्षा का वचन भी देते हैं। अपनी पत्नी के प्रति करुणा, सहृदयता है तभी दुर्योधन के कडवाहट उगलने पर उसे माँ की विवशता समझाते हैं। गांधारी ने चाहे अपने पति को अपराधी समझ उसे क्षमा न किया हो, पर वह समझता है –"अगर हम पर अन्याय और अत्याचार होता है तो दूसरे पर अन्याय और अत्याचार करने का हमें नैसर्गिक अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता।" [14] अंततः वह गांधारी को क्षमा ही नहीं प्रदान करता, अपितु उसे जीवन की सार्थकता से परिचित भी कराता है। अंत में पत्नी के पट्टी खोलने पर दावानल की ओर बढ़ता है। पत्नी का हर कदम पर साथ निभा उसके सम्मान की रक्षा करता है और अन्याय की परंपरा के बहुविकसित तंत्र के विरुद्ध लड़ना चाहता है।

शेषजी व्यक्तिगत मानसिक संघर्षों के कारण उपजनेवाली विसंगतियों को उद्घाटित करते हैं क्योंकि व्यक्तिगत समस्याएँ ही अंततः सामाजिक समस्याएँ बन जाती हैं। उनकी दृष्टि समाधान प्रस्तुत करने की अपेक्षा समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने में है। वे तो पाठकों, दर्शकों को सोचने – समझने, समाधान खोजने के लिए विवश करने में विश्वास करते हैं। नाटक की सफलता तो प्रेक्षकों से जुड़ने पर ही निर्भर करती है. यही आधुनिक नाटक का लक्षण है।

आज नारी-शिक्षा, उसके आर्थिक स्वावलंबन, नारी- मुक्ति पर विशेष जोर दिया जाता है। पर आज भी नारी चाहे महारानी हो या साधारण स्त्री, अमीर हो या गरीब, विवाहित हो या कुमारिका स्वावलंबी हो या परावलम्बी, उसकी स्थितियों में बहुत अंतर नहीं आया है। सबका कोमल गांधार यानि उनके मन का कोमल भाव खोया – सा ही है। आवश्यकता है उस कोमलता की रक्षा की।

इस तरह डॉ शंकर शेष ने अपने पौराणिक नाटकों में पुराण की कथा, चरित्र, घटना आदि के द्वारा आधुनिक चेतना और समकालीन मानवीय विसंगतियों की विडम्बनाजनक स्थितियों को प्रस्तुत किया है। इन सब घटनाओं, प्रसंगों, चरित्रों में जो कुछ नया है उसका मेरुदंड पुराना है और जो कुछ पुराना है उसपर नया रंग बिखेरा गया है। आज की स्थति भी महाभारत के शांति-पर्व से अलग नहीं है। मूल्य क्षत-विक्षत, आस्था व विश्वास हर तरफ चोटिल दिखाई देते हैं। आस्था – अनास्था द्वंद्वग्रस्त है, निराशा व असुरक्षा की भावना सर्व्यापक हो चुकी है। मृत्युबोध से मानव त्रस्त है। संत्रास, कुंठा, विघटन, प्रवंचना, अजनबीपन, आशंका, अविश्वास, विद्रूपता की धुंध को चीरते हुए शेषजी ने आज के घुटते हुए मानव की संवेदना को प्रस्तुत किया है उसके स्वर को वाणी देकर। यह वाणी यदि विद्रोह की भी हो तो अच्छी लगती है क्योंकि इस विद्रोह के पीछे व्यक्तिगत लाभ की आकांक्षा नहीं है। सामाजिक परिवर्तन का महती उद्देश्य निहित है, सामाजिक चेतना का प्रसार काम्य है।

सन्दर्भ सूची

1. राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष, डॉ. सुरेश गौतम एवं डॉ. वीणा गौतम, पृष्ठ संख्या 17।
2. कोमल गंधार, डॉ . शंकर शेष, पृष्ठ संख्या 19।
3. वही, पृष्ठ संख्या 38।
4. वही, पृष्ठ संख्या 51-52।
5. वही, पृष्ठ संख्या 49-50।
6. वही, पृष्ठ संख्या 51।
7. वही, पृष्ठ संख्या 73।
8. वही, पृष्ठ संख्या 85।
9. वही, पृष्ठ संख्या 87-88।
10. वही, पृष्ठ संख्या 67।
11. वही, पृष्ठ संख्या 37।
12. वही, पृष्ठ संख्या 76।
13. वही, पृष्ठ संख्या 53।
14. वही, पृष्ठ संख्या 102।